Chapter. 5

पंचम अध्याय

मंचीय हिन्दी काव्य की भाव संपदा, संवेदना एवं संप्रेषण के स्तर तथा कला संचेतना के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

- हिन्दी मंचीय कवियों की भावसम्पदा
- रसो के आधार पर मंचीय कवियों के वर्ग
  - वीर रस के कवि
  - हास्य रस के कवि
  - अन्य रस के कवि

पंचम अध्याय

मंचीय हिन्दी काव्य की भाव संपदा, संवेदना एवं संप्रेषण के स्तर तथा कला संचेतना के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

हिन्दी के मंचीय कविओ का लक्ष्य जनाग्रही रुझान के साथ आम आदमी की संवेदनाओं से जुड़ा हुआ होता है, कुछ कवि संमेलन विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार किसी विशिष्ट रसवा भाव पर केन्द्रित होते है, इनमे से तीन रस विशेष रुप से उल्लेखनिय है। प्रथम विर रस, द्वितीय श्रृंगार रस तथा हास्य एवम् व्यंग्य।

विर रस से संयुक्त ओजपूर्ण कविताओं का प्रसारण अधिकत्तर तब होता है जब देश पर संकट के बादल गहेराते है, या किसी शत्रुदेश से युद्ध के अवसर शामने आ जाते है। युद्ध की स्थितिओं को कव्यांकित करनेवाले मध्यकालिन कविओं में भूषण एवमं सूदन कवि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भूषण कवि शिवाजी के आश्रीत एवम् प्रशंसक रहे है। उन्होंने शिवाबावनी काव्य संग्रह में शीवाजी महाराज की प्रसत्थी ते अतिशयोक्तिपूर्ण वीर रस के ओजपूर्ण छंद रचे है। संपूर्ण मध्यकाल में इस प्रकार की राष्ट्रीय एवम् विररस से पूर्ण कविताओं का संज्ञान अन्यत्र नहीं मिलता, चुकी मध्यकाल में हिन्दी का स्वरूप ब्रझभाषा के अन्तर्गत ही समाविष्ठ था। इसलिए व्रजभाषा मे ही भूषण की छंद संयोजना सामने आती है। ब्रजभाषा काव्य में अधिकांश कविओं ने श्रृंगार एवम् भक्तिपूर्ण काव्यरचनाएँ ही अधिक्तर प्रस्तुत की है। विर रस या हास्यरस की रचनाएँ इस काल में बहुत अल्प दृष्टिगोचर होती है।

ब्रजभाषा काव्य में श्रृंगार रस का बाहुल्य देखा जाता है। इसका प्रमुख कारण सामंतवाद और राज्याश्रयी कविओं की समर्पित राजभक्ति की मनोवृत्ति रही है, राजा, महाराजाओं, सामंतो, जमीदारों अथवा धनाधीशो को प्रसन्न करने के लिए अथवा उनका मनोरंजन करने के लिए श्रृंगार रस के स्थूल चित्रण के छंद अधिक प्राप्त होते है। मध्यकालीन कविओं में देब, बिखारी, पद्माकार, मतिराम, बिहारी, तोप आदि अनेक कविओं ने लक्षण ग्रंथों की रचना करके अथवा स्वतंत्र रुप से ही श्रृंगार में भी संयोग ओर वियोग के काल्पनीक तथा मानसीक चत्रिो का बाहुल्य है, जो कही कही अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाते है।

हिन्दी कवि सम्मेलनों या हिन्दी गोष्ठीयाँ का परिवर्तित स्वरूप भारतेन्दु काल से दिखाई देता है। जहाँ हिन्दी कविता का मंच धिरे धिरे अपनी गगनचारी विलास वृत्तिं को छोड़कर जमीन से जुड़कर आम आदमी की संवेदना से सम्प्रक होत ाहै। हिन्दी साहित्य का जन जागरण काल प्रारंभ होता है, जो मध्यकालिन कविओं की विलासवृत्ति से सर्वता हटकर है। आधुनिक काल के वरिष्ठ कविओं में श्री नवनीत चतुर्वेदी, श्री नाथूराम शंकर शर्मा ''शंकर'', श्रीधर पाठक, सत्यनारायण, कविरत्न, पं. श्यामलाल शुक्ल, ''शेठ कवि'' देवी द्वीज, भगवानदत्त चतुर्वेदी , पं. अमृतलाल चर्तुवेदी, ठाकुर उलकत सिंह चौहाण, गोपाल शरण शर्मा, सनुहरी लाल पराग, खुबीराम लवानीयाँ, व्रजराज सिंह सरोज, राम कला–लला कवि, कविरत्न गोविंद चर्तुवेदी, पदमसींग शर्मा कमलेश, प्रियतम दत्त चर्तुवेदी ''चच्चन'', बलबिर सिंह रंग आदि अनेक कविओं ने युगीन परिस्थितियों के अनुसार सामायिक विशेष को अफनी कविता का वर्णीय विषय बनाया। श्री हाकिमसिंह राठोड, कौशलेन्द्र की कविता का एक उदाहरण देखीए :

''मरते सभी है, हमें डर मरने का नहीं,
मार कर हमको न आप कुछ पाएँगे।
होगा उपकार, रम जायेगा कुरंग कुल,
जग में कभी न तुम्हें भोले पनिआएँगें।
'कौशलेन्द्र' हमें बस शोक इतना है, जब
प्यारे मृग खोज में हमारी यहाँ आएँगे,
सूनी विपिन–स्थली विलोकी दुनी होगी व्यथा,
उर भर आएँगे, नयन झर लाएँगे।''[1]

जहाँ तक हास्य और व्यंग्य का प्रश्न है इस संदर्भ में बहुत कम कविओं ने ही

रचनाएँ कि है। विशेषरूप से ऋषिकेश चर्तुवेदी, बेढ़व बनारसी, मस्त राम कवि, आदि की रचनाएँ प्राप्त होती है। आधुनिक काल में सर्वाधिक प्रसिद्ध हास्य कवि के रुप में काका हाथरसी का नाम उल्लेखनीय है जिनके 30 काव्य संग्रह हास्य रस पर ही आधारित है। काका हाथरसी का मुल नाम प्रभुदयाल गोपाल था, किंतु काका हाथरसी के नाम से ही समग्र राष्ट्र में चर्चीत थे। इनके साथ निर्भय हाथरसी, अल्हड बिकानेरी, कुल्लड कवि, गुरु सक्सेना, विश्वेश्वर शर्मा आदि कविओ के नाम की चर्चित है। जिन्होंने हिन्दी कविता में हास्य रस की कविताओं भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है, इस संदर्भ में शैल चतुर्वेदी, माणिक वर्मा तथा निर्भय हाथरसी आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी मंचीय कवियों की भावसम्पदा

हिन्दी के मंचीय कविओं का मुल विषय जन समाज के साधारण, अनुभूत तथ्यों से जुड़ा रहेता था। मध्यकालीन कल्पना प्रधान, भावोत्तेजंना आधुनिक कविओं में छोड़ दी गई थी। जीवन के कटु सत्यो से जुड़ी हुई कविता ही इस समय की सर्वाधिक चर्चित काव्य प्रवृत्ति रही है।

''विभिन्न रसो में मंचीय-कवियों के व्यक्तित्व में अलग-अलग भिन्नताओं का होता भी उन्हें अधिक सफल बनाता है। मंच पर मुख्यतः वीर, हास्य तथा श्रृंगार-इन्ही तीन रसो के रचनाकार अधिक पसन्द किये जाते हैं। अतः इन रसो के कवियों के व्यकित्त्व में निम्नलिखित अतिरिक्त विशेषताएँ उन्हें 'अधिक सफल मंचीय-कवि' बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

''वीर-रस'' के मंचीय-कवि का शरीर भारी-भरकम एवं बलिष्ठ, डील-डौल लम्बा तथा व्यक्तित्व रौबदार होना उचित है। कष्ठ-स्वर ओजस्वी तथा गुरु-गंभीर होना चाहिये। काव्य की भाषा सरल तथा प्रवाहमयी हो एवं विषय-वस्तु ऐतिहासिक, राजनीतिक अथवा सामायिक घटनाओं से सम्बन्धित हो। सामाजिक, आर्थिक-विषमताओं तथा अनाचार शोषण-उत्पीड़न, वर्ग-भेद आदि के विरोध में लिखी गई ओजस्वीकविताएँ श्रोताओं द्वारा वि्शेष रुप से पसन्द की जाती है। इस रस के काव्य-पाठ में भाव-भंगी के प्रदर्शन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः कवि का उसमें दक्ष होना भी आवश्यक है। काव्य-पाठ की शैली ऐसी होनी चाहिए, जो श्रोताओं को रोमांचित कर दे। वीर-रस की रचनाएँ प्रायः लम्बी होती है, अतः कवि की स्मरण-शक्ति भी तीव्र होनी चाहिए। वीर-रस का काव्य-पाठ प्रायः बिना गाये ही किया जाता है, परन्तु कुछ कवि ओजस्वी रचनाओं को गा कर भी पढ़ते है।

''हास्य-रस'' के मंचीय-कवि का कष्ठ स्वर कोई अधिक महत्व नहीं रहता। फिर भी उसका स्पष्ट होना आवश्यक है। काव्य की भाषा सरल तथा विषय-वस्तु जन-जीवन एवं सामयिक-समस्याओं से सम्बधित होनी चाहिये। आलचितात्मक व्यंग्य-कविताएँ भी श्रोताओ द्वारा खुब पसन्द की गाती है। जो रचनाएँ श्रोताओं के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करने में सक्षम हो, वे ही मंच पर अधिक सफल होती है। वीभत्स, अश्लील तथा कटुतिपूर्ण चित्रण हास्य-कविता का विद्रपु बना देते है। तीव्र-हास्य की बजाय व्यंग्य रचनाएँ अधिक जमती है। हास्य रस के कवि का व्यक्तित्व यदि `सा हो कि उसे देखते ही श्रोताओ के चेहरे पर मुस्कुराहट खिल उठे, तो वह मंच पर अधिक सफलता प्राप्त करता है।

''श्रृंगार रस'' के गीतकार के लिए कष्ठ-स्वर की मधुरता मंचीय-सफलता हेतु एक अनिवार्य शर्त है। कवि का व्यक्तित्व सुन्दर तथा ाकर्षक हो, शरीर गौर-वर्ण एवं छरहरा हो तो अत्युतम। भारी-भरकम अथवा निश्चल शरीर, गहरे श्यामवर्ण तथा अनाकर्षक व्यक्तित्व वाले कवि का कष्ठ-स्वर चार्ट मधुर ही क्यो न हो उसके मुख से श्रृंगारी-गीतों का पाठ न तो शोभा देता है और न श्रोताओं को आकर्षित हो कर पाते है। इसके अतिरिक्त श्रृंगारिक -रचनाएँ प्रायः युवक-कवियों के मुख से ही अधिक अच्छी लगती है। प्रौढ अथवा वृद्ध कवि के मुख से श्रृंगारी -गीत सुनकर श्रोतागण उसका मजाक भी बनाने लगते है। गीतों का विषय प्रणय, मिलन, विरह आदि से संबंधित होना चाहिए। भाषा सरल हो तो अत्युतम, अन्यथा कष्ठ-स्वर मधुर हो तो फ्रांजल भाषा में लिखी गई रचनाएं भी श्रोताओ द्वारा मनोयोग पूर्वक सुनी जा सकती है।

कुछ गीतकार अपने गीतों को बिना गाये हुए भी पढ़ते है, परन्तु उनकी रचनाओं के विषय प्रायः ''प्रेम'' से सम्बन्धित न होकर राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक होते है। कष्ठ-माधुर्य के अतिरिक्त उनमें मंचीय-कवि के लिए आवश्यक प्रायः अन्य सभी विशेषताएं पाई जाती है, अतः वे भी मंच पर सफलता प्राप्त कर लेते है।

''कवि'' तथा ''मंचीय -कवि'' की प्रमुख विभाजक-रेखाएँ उपयुक्त ही है। जो कवि मंच के लिए इन आवश्यक -विशेषताओं से जितने अधिक समृद्ध होते है, ये उतनी ही अधिक लोकप्रियता भी प्राप्त करते है।

रसो के आधार पर मंचीय-कवियों के वर्ग

रसो के आधार पर मंचीय-कवियों को निम्नलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है-

(क) वीर रस के कवि।

(ख) हास्य रस के कवि।

(ग) श्रृंगार रस के कवि।

(घ) अन्य रसो के कवि।

वीर रस के कवि –

इस वर्ग ने वे कवि आते है, जो ऐतिहासिक, पौराणिक, सामोजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, अनाराष्ट्रीय अतवा सामायिक घटनाओं को आधार बना कर ओजस्वी–रचनायें लिखते है। युद्ध, शोषण, उत्पीड़न, सामाजिक एवं आर्थिक–वैषम्य, कुरीति, अनाचार, अलाचार, हिंसक–घटनाएँ, राष्ट्रभक्ति, बलिदान, कुटिलनीति, गरीबी, भुखमरी, मंहगाई, अभाव, उकाल आदि विषय इस रस के कवियों की रचनाओं के प्रमुख अंग होते है। साम्राज्यवार, पुंजीवाद, सामान्तधार, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, जातीयतावाद, तानाशाही, धार्मिक–अन्धविश्वास एवं कुप्रथाओं के विरोध कमें लिखी गई रचनों भी खुब सशही जाती है। शैर–वीभत्स तथा भयानक रसो की रचनाएँ भी इनी वर्ग के अतीर्गत ओ जाती है। परन्तु इन रसो का प्रयोग कम ही होता है।

हास्य रस के कवि –

इस वर्ग में वे कवि आते है, जिनती रचनाओं का विषय चार्ट कुछ भी हो, परन्तु उनने हास्य अथवा व्यंग्य का पुट अवश्य होता है।

श्रृंगार रस के कवि –

इस वर्ग में वे कवि आते है, जिनकी रचनाओं का मुख्य विषय प्रणय–लीलाओं से सम्बन्धित होता है। विरह–मिलन, मान–मनुहार, नख–शिख, रुप–सौन्दर्य, यौवन अदि के अतिरिक्त मधुपान, प्रकृति–वर्णन आदि विषयो की गणना भी सामान्यतः श्रृंगार रस के अन्तर्गत ही की जाती है। लोकगीतों के गायक भी इसी श्रेणी के माना जाते है।

अन्य रस के कवि –

इस वर्ग में करुण, भक्ति, वात्सल्य तथा अनुभूत रसों की रचानाएँ लिखने वाले कवि आते है। ऐसी रचनाओं में दार्शनिकता का पुट प्रायः अधिक रहता है तथा उनकी भाषा भी प्रांजल अथवा दुरह होत है। इस कारण वे सामान्य–श्रोताओं की समक्ष से परे की वस्तु बन जाती है और उन्हें सुनने में विशेष आनन्द भी नही आता। बहुसंखाल श्रोताओं को आकर्षित करने में असमर्थ रहने के कारण इन रसो की रचनाएँ लिखते वाले कवियो को कवि सम्मेलनो के मंच पर यदा–कदा ही बुलाया जाता है। इन रसो के प्राधावन्य वाली केवल वे ही कविताएँ श्रोताओं द्वारा पसन्द की जाती है, जिनने श्रृंगारिता अथवा हास्य का भी कुछ पुट होः परन्तु ऐसी रचनाएँ लिख पाने की क्षमता रखने वाले

कवियो की संख्या बहुत ही कम है।''[2]

उक्त विवेतन के आधार पर पट सही जा सकता है कि कवि सम्मेलन के मंच पर मुख्यतः वीर हास्य तथा श्रृंगार रस के कवि की सफलता प्राप्त कर पाते है।

मंचीय कविओ का विशेष ध्यान उन श्रोताओं के उपर होता है जो कवि सम्मेलन श्रवण करने के लिए सामने उपस्थित होते है। जीस तरह मंचीय कविओं के अलग अलग वर्ग होते है या कही की उनकी अलग अलग कथ्य शैलीयाँ होती है वैसे ही श्रोताओं के भी अलग अलग वर्ग देखे जा सकते है। जैसेकी गाँव या देहात में सम्पनन होने वाले कवि सम्मेलनों में श्रोता अधीकतर अशीक्षीत ही होते है। इस तरह के श्रोता विशेषकर हास्य और व्यंग्य की कविताओं का ही आनंद ले पाते है, या फिर देश पर पडे शंकटकालीन युद्धो के समय विररस की कविताओं का आनंद उठाते है। गंभीर साहित्य के गीतो का या दर्शन और आध्यात्म से सम्बंधीत गहरे भावों को वे आत्मज्ञान नहीं कर पाते।

इससे अलग जो कवि सम्मेलन बड़े नगरो या फिर किसी सरकारी प्रतिष्ठानों में सम्पनन होते है, उनमें श्रोतागण भी प्रबुद्ध और शिक्षित होते है, ऐसे कवि-सम्मेलनों में साहित्य के गंभीर गीतो का भी वाचन होता रहता है। और श्रोतागण उसे ठीक तरह से समझकर सही जगह तालीयाँ बजाकर अपना अभीप्राय व्यक्त करते है।

तीसरी श्रेणी के भी कवि सम्मेलन होते है जो विशेष विषय पर या फिर विशेष पर्व या त्यौहार पर आयोजित होते है इनमें होली,दिवाली, वसंत, गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, हिन्दी दिवस, या फिर अन्य किसी विशेष संदर्भ में कवि सम्मेलन आयोजित होता है। गाँधी जंयती, शिक्षक दविस, या बाल दिवस पर आयोजीत कवि सम्मेलनों में विषय की निश्चित सीमाएँ होती है। इसी तरह हिन्दी दिवस पर आयोजित कवि सम्मेलन नितांत निरस और आरोचित से दृष्टिगत होते है।

कवि सम्मेलनों में इतर कुछ काव्य गोष्ठियाँ भी सम्पन्न होती है। जहाँ रस और भावों का प्रभाव उच्चतर मांपदंडों पर प्रगट होता है। ऐसी कवि गोष्ठियाँ किसी भी सरकारी या गैरसरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा आयोजति होती है।

कवि सम्मेलनों में भावा-अभिव्यक्तिके परोक्ष एवम् अपरोक्ष दो प्रकार सामने आते है। अधिकांश मंचीय कवि अभिधा में ही अपनी बात सहज रुप से व्यक्त करते है, किन्तु कुछ कविओं को लक्ष्य परोक्ष रीत से लक्षणा या व्यंजनामें बात कहने का अपना अलग तरीका होता है। मंच पर आवश्यकता है कि कविता गेथ या छंदबंध हो तभी सामान्य श्रोता उसका रसास्वादन कर सकता है और छंदस्थ या नयी कविता लय औड़ तुक

के बिना रसाग्रही न होने की बजह से मंच पर स्थापित नहीं हो पाते। और इसके समानांतर नवगीत, मंच पर स्थापित हो गया।

''जीवन का दूसरा नाम लय और छंद है। हमारी साँसों की गति भी इसी से नियंत्रित है। लय भंग होते ही हम रोग के शिकार हो जाते हैं और हमारा दम फुलने लगात है। जीवन में छंद एवं लय का ज्ञान हम प्रकृति से प्राप्त करते है। सच तो यह है कि स्वयं प्राणी भी प्रकृति का ही क हिस्सा है। प्रकृति से इतर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हालाँकी बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण हम बाजारु अधिक होते जा रहे हैं। इसका दुखद परिणाम यह हैं कि धीरे-धीरे प्रकृति से हमारी दुरी बढ़ती जा रही हैष फिर भी हमारी खुली आँखो से कुछ दिखाई नहीं देता। इसे देखने और महसूस करने के लिए सिर्फ आँके खुली रखना ही पर्याप्त नहीं है, इसके लिए जीवन के प्रति रागातमक भाव भी चाहिए। हिंदी में नवगीत का विकास इसी जीवनवादी दृष्टि से हुआ है।

हालाँकि नवगीत का जन्म और विकास भले हो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के तीन दशकों में हुआ लेकिन गीत का जन्म तो आदिम अवस्था में ही हो चुकाथा। इसका श्रोत ऋग्वेद के मंत्रो में भी ढूँढा जा सकता है। वैदिक काल में गीतकाव्य की दृष्टि से विविधता का हमें दर्शन होता है। इसके कई रुप थे-श्रुति गीत, अभिचार गीत, गोचारण गीत आदि। संस्कृत में भी गीतकाव्य की परंपरा बड़े ही मनोरम रुप में विकसित हुई। विश्व की सर्वोत्तम कृति गीता-चिंतन इसे परंपरा का सर्वोत्तम उदाहरण है। बाद के समय में जयदेव की 'गीत गोविंद' आदि रचनाएँ इसी परंपरा की हमें याद दिलाती है।

भारतीय भाषाओं मध्यकाल में यह विकास अपने बदले हुए रुप में दिखाई देताहै। इस क्रम में हमें कबीर की सबदी रैदास और तुलसीदार के पद अधिक आकर्षित करते हैं। सूर के विषय में तो यहाँ तक कहा जात है कि उनके गीत ही महाकाव्य हो गए। कबीर की सबदी औड़ तुलसीदास की विनयपत्रिका गीतावली और कृष्ण गीतावले में गीसीकाव्य के श्रेष्ठ रुपों का दिर्ग्दशन होता है।

हिंदी की आधुनिक काव्यधारा में नवगीत के विकास के संबंध में शंभूनाथ सिंह मानते है कि नवगीत की विकास-प्रक्रिया का प्रारंभतो भारतेंदु से ही हो गया था, पर उइसका वास्तविक प्रांरभ निराला की कवितओं से माना जाना चाहिए। छायावादी काल में गीतिकाव्य रहस्यवाद, राष्ट्रीयता, श्रृंगार एवं पारंपरिक सीमाओं में ही आबद्ध होकर रह गया था, जिसके कारण उस काल के गीतों की संवेदना बासी हो गकई थी निराला उस काल के गीतो की संवेदना बासी हो गई थी निराला उश काल के अकेले ऐसे कवि हैं,

जिन्होंने उन पारंपरिक सीमाओं को तोड़ा औड़ नवगीत की धारा में एक नये युग का आरंभ हुआ। यहाँ उल्लेखनीय यह भी है निराला न केवल नवगीत के सबसे बड़े कवि है, बल्कि नई कविता का जनक भी उन्हें ही माना जाना चाहिए। नई कविता का उद्घोष भले ही सन् 1950 के आसपास किया गया ह किंतु इसका प्रारंभ छयावाद युग में ही सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'मुक्त छन्द' में 'वह तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता लिखी थी, जो कि नई कविता की भंगिमा से युक्त है।

यहाँ उल्लेखनीय यह भी है कि उस काल में निराला की 'बेला' और 'नए पत्ते' नामक पुस्तकों में नवगीत और ग़ज़ल जैसे काव्यरुप भी संकलित थे। निराला ने इन की विभिन्न विधाओं अलग करके नहीं देखा। यह निराला की काव्यदृष्टि ही थी कि उन्होंने कविता और गीत की धाराओं को एक साथ बहाया। यह उनकी विशालता और साहस का घोतक है कि उन्होंने अपने ही द्वारा निर्मित परंपरा को बार–बार तोड़ा और नई परंपरा कायम की। छायावादी काल में रहते हुए भी अपने समय से बाहर निकालकर निराला ने जो लिखा, उसकी अनुर्गुज सदियों तक बनी रहेगी। 1940 में लिका उनका नवगीत उनकी प्रतिभा का बोध करता है–

'में अकेला
देखता हुँ आ रही
मेरे दिवस की सांध्य बेला।
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मंद होती जा रही
हट रहा मेला।
जानता हूँ नदी, झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हुँ, हंस रहा यह देख
कोई नहीं मेला।''

साहस और संघर्ष की राह पर चलनेवाला आदमी अकेला ही होता है। जीवन की ढलान पर भी हँसने की ताकत जहाँ से मिलती है, नवगीत का उत्स भी वहीं से होता है, नवगीत की परंपरा का निरंतर विकास हो रहा है। जो लोग अपने इस विकास को

नहीं देख पा रहे है, वे या तो अपने समय के साथ नहीं हैं या उनमें इमानदारी का अभाव है। अपने समय के साथ होने का अर्थ है आज की विसंगतियों और विद्रूपताओं को समझना, जिनके कारण नवगीत का विकास हुआ।

अभी हाल में प्रकाशित चार नवगीत संकलनों के केंद्र में रखकर हम इस विकास का ाकलन करेंगे। ये संकलन है–मकर चाँदनी का उजास, रंग मैले नहीं होंग (नचिकेता), सच के ठाठ निराले होंगे (महेन्द्र नेह) और भीतर–भीतर आग (शांति सुमन)।

नचिकेता जनधर्म चेतना के रचनाकार हैं। इनके गीतों में जहां एक ओर समय की टंकार सुर्नाइ पड़ती है, वहीं नई नवेली दुल्हनों की चूरिड़यों की खनक भी महसूस की जा सकती है। सच तो यह है कि प्रेम और क्रांति एक ही नदी के दो किनारे हैं। जिसके भीतर प्रेम नहीं है, उसके भीतर क्रांति का भाव कभी पैदा ही नहीं हो सकता। क्रांति की कामना करने वाला जनधर्मी कवि जनता और मजलूयों से कितना प्रेम करता है, इसका अहसास वही कर सकता है जो इंसान और इंसानियत से जुड़ा हुआ है। उसके लिए प्यार पागलपन नहीं है, बल्कि जीवन की जंग में प्राप्त की हुई एक विजय है, जिसके सहारे जीवन की कठिनाईयों में भी वह हँसता हुआ दिखाई देता है। नचिकेता 'मकर चाँदनी का उजास' संकलन के पहले ही गीत से इस भाव का बोध करा देता हैं। इस गीत में कवि लिखता है–

''प्यार नहीं रुक सकता भाई
कभी किसी के रोके।
प्यार कमाई है मिहनत की रोटी गमर–गरम है
होंठों की मुस्कान खनक चुड़ी की नरम–नरम है
प्यार हमेशा दर्द बांटता दीन
और दुखियों के।
प्यार पसीना है, घट्ठा है, तलवों में छाला है
प्यार बुढ़ापे की लाठी है, यौवन की हाला है
प्यार छलकता है बचपन की
आँखो के झरनों से।''

हम किसी भी रचना का मुल्यांकन करते समय अक्सर उसके जरुरी पश्न को छोड़ देते हैं। वह जरुरी प्रश्न है उसकी रचना का उद्देश्य। कोई भी रचना तभी बड़ी हो सकती है, जब उसका उद्देश्य बड़ा हो। उस उद्देश्य से ही रचनाकार की दृष्टि का बोध होता

है। आज हिंदी में अनेक ऐसे संकलन देखने को मिलते है जो इसलिए महत्वपूर्ण हो गई है। क्योंकि उनमें संकलित रचनाएँ आम पाठक के पल्ले नहीं पड़ती। ऐसे में उन रचनाओं का उद्देश्य तो समझ में नहीं ही आता, यह भी समझ में नहीं आता कि आखिर किसके लिए वे रचनाएँ लिखी गई हैं। यह सवाल अक्सर सुविज्ञजनों के मन में उठता ही होगा, लेकिन न समझ पाने की बात वे इसलिए भी नहीं कह पाते, क्योंकि उन्हें भी यह डर बना रहता है कि कहीं उन्हें बौद्धिक वर्ग के दड़बे से बाहर न कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में लगता है कि कविता का सबसे ज्यादा नुकसान इन बौद्धिक कहे जानेवाले लोगों ने किया है। इनमें न सिर्फ साहस की कमी है, ईमानदारी का भी अभाव है और कभी–कभार उनकी समझ पर भी संदेह होने लगता है। आज अगर जनता कविता से कट रही है तो इन्हीं लोगों के चलते। अघर उलझाव और भाषायी अबुझपन ही बड़ी कविता का मापदंड है तो नागार्जुन, सर्वेश्वरयदाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल, शील, धूमिल आदि कवियों को हम किस कोटि का कवि मानेंगे जिनकी कविताएँ अतिरिक्त बौद्धिकता से बोझिल नहीं हैं, सीधे-सीधे जनता से जुड़ती है।

इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि अच्छी कविताएँ लिखी नहीं जा रही है और सारे नवगीत बहुत उच्चकोटि के हैं। नवगीत के नाम पर भी भयानक अराजकता की स्थिति है। कुछ नवगीतकार सिर्फ शिल्प को ही गीत मान लेते हैं। शिल्प तो मात्र रचना का बाह्य् रूप है, आत्मा तो उसके भीतर अंतर्निहित है। आत्मा औड़ शरीर दोनों का स्वस्थ रहना जरुरी है। इस दृष्टि से नचिकेता के नवगीत नवगीतों की भीड़ में भी कुछ अलग दिखाई देते है। मकर चाँदनी का उजास और मैले नहीं होगे। की रचनाएँ अपने समय मुकम्मल तस्वीर पेश करती है। लेता के गीतों की खास बात यह है कि इनके यहीं प्रेम इकहरा नहीं है, वह अनेक रुपों में दिखाई देता है, और इससे भी अधिक खास बात यह है कि यह प्रेम ऐसे लोगों के प्रति है, जिनके बिना यह दुनिया चल ही नहीं सकती, फिर भी इस व्यवस्था में उनके लिए कोई जगह नहीं है। ऐसे लोगों के चेहरों पर मुस्कान की कामना करते थे गीत जहां एक और वर्तमान का विद्रुप चेहरा दिखाते हैं, वही एक सपना भी बुनते हैं। यह सपना बेहतर कल का सपना है।

हँसी भी कई तरह की होती है। एक हँसी वह जिसमें कुटिलता झलकती है और दूसरी वह जिसमें निर्मल स्नेहं प्रतिबिंबित दिखाई देता है। सामंती और शोषकों की हँसी कुटीलता भरी होती है। इस मानसिकता के लोग दुसरो की मजबुरी पर हँसते है। उनकी हँसी खुशी पैदा नहीं करती बल्की टीस देती है। नचिकेता ऐसी हसी की बात नहीं करते। उनकी हँसी निर्मल और निश्चल है। इस हँसी में द्वेत नहीं है। वह मन का उद्‌गार है

जो चेहरे पर उभर आता है। ऐसी हँसी मेहनत और इमानदारी से जीनवाले लोग ही हँस सकते हैं। अपने एक गीत में वे लिखतें हैं –

''सच कहुँ
तुम तो हमारे गाँव की
उजली हंसी हो।
वह हँसी जिसमें सुबह की ताज़गी होती
लहूँ के आवेग जैसी ज़िदगी होती
इसलिए तुम हर फसल की
मुस्कराहट में बसी हो।
वह हँसी, जिसमें न होती गाँठ उलझन की
किंतु होती सादगी निर्वसन बचपन की
इसलिए तुम लग रही मुझको
भरे खलिहान–सी हो।''

हालाँकी उजली हँसी अब गाँवो में भी देखने को नहीं मिलती। जो गाँवों की हँसी हमारी चेतना में बसी हुई है, वह बहुत पीछे छूट गई है। यह भी कम पीड़ा दायक नहीं कि हमारा वर्तमान हमें आगे ले जाने की बजाय बार–बार पीछे लिए जा रहा है। गाँवों में जो लोग रहेत हैं, उन्हें अभ गांव एक बाजार–जैसा ही लगने लगा है। वहाँ भी अब निर्मल हँसी का कोई मूल्य नहीं है। तेजी से बढ़ते बाजारवाद के प्रभाव और मीडिया की भूमिका ने गाँव का स्वरूप भले ही न बदला हो लेकिन उसकी आत्मा तो इनके प्रभावों से बदल ही गई है। अच्छी बात यह है कि नचिकेता के अनेक गीतों में यह दुखद बदलाव भी महसूस किया जा सकता है।''[3]

नव–गीत के साथ ही गजल विधा का भी पर्याप्त वाचन इन कवि सम्मेलनों में होता रहा है। वैसे तो यह गजल विधा शुद्ध रुप से उर्दु और फारसी से अग्रसर हुई है किन्तु हिन्दी में यह दुष्यंत कुमार औड़ नीरज के द्वारा अधिक लोकप्रिय बनकर मंच पर स्थापित हुई है। आज के परिपेक्ष में ही हिन्दी में गजल लेखन का प्रयोग अन्य विधाओं से कही अधिक हो रहा है। यह गजल विधा अब हिन्दी की अफनी विधा हो गई है। जिसमें हिनदी की सहज प्रवृत्ति द्रष्टगत होती है। अब हिनदी की गजल में फारसी की गजल कि तरह कोई निश्चित आचार संहिता भी दृष्टिगत नहीं होती अर्थात अब हिन्दी की गजल हिन्दी के ही मान्यमुल्यों पर अग्रसर हो रही है। ओर इसे हम हिन्दी की

ही एक प्रथम विधा के रुप में स्विकार कर लेते है। दुष्यंत कुमार और नीरज के अलावा मंच से जुड़े अधिकांश कविओं ने इस गजल विधा का प्रयोग किया है।

मंच पर नवगीत को प्रतिष्ठापति करने वाले विशिष्ट गीतकारों में देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', रवीन्द्र भ्रमर, चन्द्रशेन विराट, सूर्यभान गुप्त, सत्यानारायण, विरेन्द्र मिश्र, कुवँर बेचेन, अवधबिहारी श्रीवास्तव, माहेश्वर तीवारी, इसांक अश्क, राधेश्याम शुक्ल, यशमालवीय, विष्णु विराट, कौशलेन्द्र, बुद्धिनाथ मिश्र, किशन सरोज, कैलाश गोत्तम, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गजल पढ़नेवाले हिन्दी कविओं में पठन और गायन दोनो का ही वैशिष्ट्य देखने को मिलता है, हिन्दी के कविओं में गजल के रुप में रचना प्रस्तुत करने वाले सोमठाकुर, किशन सरोज, आत्मप्रकाश शुक्ल, राजेश दिक्षित, भगवानदास जैन, कुँवर बैचेन, आदि के नाम प्रखान है। इन की गजलों में पारवारिक परिवेश के आत्मीय भावो को स्पर्श किया गया है। माँ, पिता, बेटी, पत्नी, प्रीयसी, दोस्त, आदि के आत्मीय संबंधों को इनमें व्यक्त किया गाया है। नवगीत और गजल के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट गीतों में जनवादी गीतो का भी प्राधान्य रहा है। जीनमें गाँव से शहर तक के सांस्कृतिक और पारवारिक संबंधों को काव्यतिंत किया गया है।

कुछ कवियों ने गीत और ग़ज़ल को समन्वित रूप से सामने परोसा है। जिससे गीत और ग़ज़ल के नए प्रयोग भी सामने आए। ऐसे कवियों में नीरज, किसन सरोज, सोम ठाकुर, बलवीर सिंह 'रंग' आदि प्रमुख हैं।

बलवीर सिंह 'रंग' लिखते हैं –

आइये मरुभूमि उद्यान की चर्चा करें
ध्वंश के संदर्भ में निर्माण की चर्चा करें
पूर्ण आहूति दे उसी यजमान की चर्चा करें,
बिजलियों की कौंधती मुस्कान की चर्चा करें।[4]

इसी तरह नंद चतुर्वेदी कहते हैं–

गा हमारी जिंदगी कुछ गा
आग का कोई समन्दर ला
आखिरी उस आदमी तक जा
अब नदी में से नहाकर आ।[5]

नीरज जी कहते हैं –

मैं तूफानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो
तुम पथ के कण-कण को तूफान करो
तुम मत मुझपर कोई एहसान करो
है नहीं मुझे स्वीकार दया अपनी भी
तुम पग-पग पर जलती चट्टान करो।[6]

राम मनोहर त्रिपाठी लिखते हैं –

शायद मेरे गीत किसीने गाये हैं
इसीलिए बेमौसम बादल छाये हैं
जिसका मेरे गीतों से कुछ नाता है
किसी निमंत्रण के स्वर मुझ तक आये हैं
अपनी कहने का तब अवसर आता है
किसी लहर में तट के प्राण जलाये हैं।[7]

विष्णु विराट जी की काव्य पंक्तियाँ देखिए –

तू मुझसे भाग के जाएगा तो जाएगा कहाँ
तेरे मुकाम से आगे मुकाम है मेरा
उंगलियाँ जिसने अँधेरे की जला डाली हैं
एक मिट्टी के दिये को सलाम है मेरा
एक हँसता हुआ बच्चा लिपट गया मुझसे
इसी धरती पे यहीं स्वर्ग धाम है मेरा।[8]

इस तरह के अनेक प्रयोग हिन्दी मंचीय कवियों में देखने को मिलते हैं। जिनकी कविता में गीत और ग़ज़ल दोनों ही विधाओं के स्वर समन्वित होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी में साहित्यिक और स्तरीय ग़ज़ल का लोकाग्रही प्रारम्भ दुष्यंत कुमार से माना जाता है। दुष्यंत कुमार के बाद सैंकड़ों मंचीय कवियों ने ग़ज़ल विधा को गीतों के स्वर में प्रस्तुत करके अपनी जनवादी रुझान का परिचय दिया है।

अंत में यह कहा ज़ा सकता है कि हिन्दी के मंचीय कवियों ने संवेदना के स्तर पर लोकरुचि के अनुरुप विषय को प्रस्तुत करके जनख्याति अर्जित की है। जिसमें मुक्तक, रुबाइयाँ, सवैया, चतुष्पदी, दोहे, गीत, ग़ज़ल, नवगीत, छन्द आदि तमाम काव्य विधाओं का प्रयोग किया है। बदलते मानवीय मूल्यों के तहत इन मंचीय कवियों ने प्रबुद्ध श्रोताओं का जहाँ एक ओर स्वस्थ मनोरंजन किया है वहीं दूसरी ओर राष्ट्र और समाज के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त करते हुए नवजागृति

का शंखनाद भी किया है। अभिव्यक्ति में भावों की गहराई, आत्मीयता के स्पर्श और वर्तमान समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन अधिकांश मंचीय कवियों ने किया है। इस परीपेक्ष में हिन्दी के मंचीय कवियों की सार्थक भूमिका को नकाना नहीं जो सकता।

संदर्भ सूचि

1. काकली पृष्ठ 16
2. हिन्दी कवि सम्मेलन और मंचीय–कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी 'वीणा', प्रगति प्रकाशन–आगरा। पृष्ठ 78 से 81
3. लेख – नवगीतों में जीवन, राधेश्याम तिवारी, अलाव अनियतकालीन पत्रिका, अंक 10, मार्च 2006, सपादकः रामकुमार कृषक, प्रकाशन : शब्दलोक, दिल्ली। पृष्ठ 245–249,
4. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, संपादक : मधुकर गौड, पृ. 40
5. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, संपादक : मधुकर गौड़, पृ. 41
6. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, संपादक : मधुकर गौड़, पृ. 45
7. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, संपादक : मधुकर गौड़, पृ. 74
8. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, सपादक : मधुकर गौड, पृ. 125